भारतीय संगीत प्रचार-प्रसार में तत् वाद्यों द्वारा नव रस निष्पत्ति

उमा कुमारी वैष्णव
शोधार्थी, संगीत विभाग
निर्देशिका :
डा. किन्शुक श्रीवास्तव
वनस्थली विद्यापीठ

रस के बिना प्रत्येक कला अर्थहीन हैं जब तक कि वह रस की सृष्टि नहीं करती। संगीत का सर्वोपरि एवं चरम उद्देश्य भावाभिव्यक्ति द्वारा रसानुभूति करवाना हैं। चाहे वह गायन, वादन, नृत्य की कोई भी विद्या हो। वादन के क्षेत्र में रसानुभूति में वादन कला का अपना एक विशिष्ठ स्थान हैं। भारतीय संगीत के अन्तर्गत चतुर्विध वाद्य में वर्गीकृत सभी वाद्य अपनी बनावट तथा विशिष्ठ वादन विधि द्वारा भिन्न-भिन्न रसानुभूति प्राप्त कराने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। अपने शोध विषय को केन्द्रित करते हुए यदि तत् वाद्यों द्वारा रस निष्पत्ति की बात की जाए तो इसमें वर्गीकृत सभी वाद्य विभिन्न रसों की अनुभूति कराने में सक्षम हैं।

रस एक ऐसी अनुभूति है जो संवेदनाओं एवं मन में उठने वाले भावों के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं। रस वादी आचार्य रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। वैदिक श्रुति "रसोवैसः" 1 के आधार पर इसको आनन्द स्वरूप ब्रम ही माना गया हैं। "रस मानसिक अवस्था का परिणाम है जिसमें हम सौन्दर्यबोध करते हुए आनन्द की अनुभूति करते हैं। यह एक परिष्कृत, दुर्लभ तथा अमूल्य तत्व है जो कठिन परिश्रम साधना तथा तपस्या से प्राप्त होता हैं। अतः इसकी निष्पत्ति के लिए मानसिक चेतना, धैर्य तथा एकाग्रता द्वारा निरन्तर साधना अपेक्षित हैं।" 2

रस शब्द का अर्थ–

"रस" शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। ललित कलाओं में विशिष्ठ प्रकार की अलौकिक आनन्दानुभूति को 'रस' कहा गया हैं। वह 'रस ' स्थूल ना होकर 'सुक्ष्म' होता हैं, प्रत्यक्ष ना होकर परोक्ष होता हैं तथा वर्ण्य विषय ना होकर अनुभवगम्य होता हैं। आचार्यों ने ऐसे रस को "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा हैं।" 3 इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया हैं– " यतो वाचो निर्वतन्ते अप्राप्य मनसा सह" अर्थात जहाँ से वाणी मन के साथ लौट आती है तथा जिसे बुद्धि से प्राप्त करना असम्भव हैं,वहाँ जो आत्म व्यापार से अनुभव होता हैं, वह रस हैं। " 4

"नाट्य शास्त्र" ही सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ हैं जिसमें रस की शास्त्रीय विवेचना की गई हैं और रस का निरूपण नाट्य प्रसंग में किया हैं। "नाट्यशास्त्र" में 'भरत' रस की परिभाषा इस प्रकार देते हैं– "यथाहि नाना व्यञ्जनौशधिद्रव्य संयोगाद्वस निश्यतिः तथा नाना भावोपगमाद्रसनिश्पत्तिः।" 5 अर्थात् जिस प्रकार नाना स्वंजनो एवं औषधि आदि के संयोग से रसादि की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से रसनिष्पत्ति होती हैं।

रस सिद्धान्त को समझने के लिए रस के अवयवों–स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों को समझना अति आवश्यक हैं।

भाव–भाव चित्तवृत्ति स्वरूप होते हैं, मानव की उद्दीप्त मानसिक स्थिती के सूचक होते हैं। रस का अस्वाद भाव के माध्यम से प्रेक्षक के ह्रदय में होता है। रस और भाव में परस्पर आत्मा और परमात्मा का संबंध है। भरत ने रस और भाव का पारस्परिक संबंध बताते हुए कहा कि भावों से रस निश्पत्ति होती हैं,–

" न भावतीतनो ऽ स्ति रसो ने भावो रसवर्जितः
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिन से भवेत्।" 6

अर्थात् न ही रस भावहीन होता हैं और न ही भाव रसहीन। उसे पारस्परिक संबंध के द्वारा ही अभिनय में सिद्धि होती है। रस और भाव के संबंध की व्याख्या करते हुए 'भरत' ने "नाट्यशास्त्र" में बताया है कि जैसे बिना औषधि के संयोग से व्यजंन, स्वादिष्ट नहीं बनता, वैसे ही रस और भाव बिना मनोरंजन सम्पूर्ण नहीं होता।

उपरोक्त विवरण में यह स्पष्ट है कि रस और भाव का घनिष्ठ संबंध हैं और भावों के द्वारा ही रस की प्राप्ति होती है।

स्थायी भाव– "रसावस्थाः परम्भावः स्थापित प्रतिपद्यते।" अर्थात् जो भाव 'रस' की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, वहीं स्थायी भाव कहा जा सकता है।

भरत मुनि ने "नाट्यशास्त्र" में प्रत्येक रस का किसी विशिष्ठ भाव से संबंध होता है। फलस्वरूप आठ स्थायी भावों के आधार पर रसों की संख्या भी आठ ही बताई है, जो इस प्रकार हैं –

"श्रृंगार,हास्य करूण रौद्र वीर भयानकाः।
विभत्सादुत संज्ञोचैत्यष्टो नाट्यो रसाःस्मृता।।" 8

अर्थात् नाट्य में आठ रस माने गये हैं–

श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, विभत्स तथा अदभुत। भरत ने शंत रस नहीं बताया है किन्तु 9 रस बताए गए हैं–

सर एस.एम. टैगोर के अनुसार–

Which com not be hid and which crlminates in a raga (Passiun) through vibahav, Anubhav & Sanchari bhav is called sthayi (Permanent) Bhavs"

स्थायी भावों और रसों का पारस्परिक संबंध इस प्रकार हैं–

क्र.सं.	नाम रस	स्थाई भाव
1.	श्रृंगार रस	रति
2.	हास्य रस	हास
3.	करूण रस	शोक
4.	रौद्र रस	क्रोध
5.	वीर रस	उत्साह
6.	भयानक रस	भय
7.	वीभत्स रस	जुगुप्सा
8.	अद्भुत रस	विस्मय
9.	शांत रस	निर्वेद

विभावः–

स्थाई भाव को जताने वाले भाव विभाव कहलाते हैं। वे व्यवित या परिवर्तन में दो पक्ष आवश्यक होते हैं, एक तो वह जिसके ह्रदय में भाव उत्पन्न और संचारित होता है और दूसरा वह जिसके ह्रदय में भाव उत्पन्न होता है, वह आश्रम कहलाता हैं तथा जिसके प्रतिभाव प्रकट होता हैं, उसे आलम्बन (सहारा) कहते हैं। भरत ने विभाव की व्याख्या इस प्रकार की हैं –

''बहवोऽर्था विभात्यन्ते वाड.गाभियाश्रयाः।
अनेन यस्मस्तेनायं विभाव इति संज्ञितः।। नाट्यशास्त्र

अर्थात् जो वाणी, अंग तथा अभिनय के द्वारा अनेक अर्थों का बोध कराते हैं, वे विभाव कहलाते हैं। विभाव को भाव का कारण माना गया है।" 10

श्जीम बंनेम वि"जौलप ईीअ ृपबी मदजमत पदजव जीम बवउचवेपजपवद वि दिल चवमउ वि कितंउंतम बंससमक अपईीतण्श

अर्थात् इस लोक में रति आदि भावों के जो उदबोधक हो उन्हें नाट्य काव्य में विभाव कहते हैं। श्रोताओं और दृष्टाओं के भावों को जो रसास्वादन बनाये उसे विभाव कहते हैं– ये दो प्रकार के होते हैं।

(1). आलम्बन, (2).उद्दीपन।

(1) आलम्बन–

जिसमें प्रतिभाव प्रकट हो हैं उसे आलम्बन कहते हैं अर्थात् वह पात्र जो भाव प्रस्तुत करने का विषय हो,कोई स्थायी भाव आश्रय के ह्रदय में किसी के प्रति उत्पन्न होकर कुछ कार्यों या वस्तुओं से बढ़ता भी है इसको हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि रति आदि स्थायी भाव जो नायक नायिका के ऊपर अवलम्बित है, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं, यथा चन्द्र, चन्द्रिका, वन, उपवन, पुष्प, ऋतु ,गंध आदि।

(2) उद्दीपन–

भावों को उद्दीपन करने वाले इस प्रकार के कार्यों या वस्तुओं को अर्थात् रागादिक भावों को उद्दीप्त करें जिससे ऐसी स्थितियाँ आती है जिनके द्वारा भावों को उत्तेजित किया जाता हैं।

अनुभाव–

आलम्बन विभाव द्वारा जाग्रत तथा उद्दीपन विभाव द्वारा उद्दीपित होने पर स्थायी भाव में जो चेष्टाएँ होती हैं। अनुभाव का अर्थ है –

''अनुभावयति इति अनुभावः''

भरत ने अनुभाव का वर्णन इस प्रकार से किया है –

" वागड्.गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थों अनु भाव्यते।
भाखाड्.गोपाड्.ग संयुक्तरत्वनु भावास्ततः स्मृता।।" 11

अनुभाव दो प्रकार के होते हैं– (1) सात्विक (2) कायिक।

संचारी भाव–

स्थायी भावों के साथ बीच–बीच में जो प्रकट होने वाले भाव हैं ये 38 हैं। मनुष्य के मन में स्थायी रूप से रहने वाले अर्थात अस्थायी रूप से व्यक्त होने वाले भाव संचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। जैसे– कभी खुशी में बीच–बीच में भौहें ऊपर नीचे होना। तरह–तरह के मुँह बनाना आदि।

रस के प्रत्येक कला का आधार स्तम्भ हैं बिना रस निष्पादन के रस की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारतीय शास्त्रों के अन्तर्गत 64 कलाऐं मानी गई है। जिनमें प्रत्येक कला द्वारा रस निष्पत्ति होती है। इन 64 कलाओं में संगीत को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ हैं। जिसके अन्तर्गत तीन कलाएं आती हैं। गायन, वादन और नृत्य। जिनमें गायन के बाद वादन कला आती हैं तथा वादन कला में तंत्री वाद्य सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। क्योंकि मेरा शोध का विषय भी तंत्री वाद्यों पर आधारित है और यदि देखा जाए तो तंत्री वाद्यों के इतने प्रकार प्रचलित हैं जिनमें प्रत्येक तत् वाद्य की अपनी निजि विशेषता है। जिसमें वे अन्य से अलग हैं संभवतः इसी विशेषता के कारण प्रत्येक तत् वाद्य से अलग–अलग रस की सृष्टि होती है।

विद्वानों का मानना है कि विभिन्न तंत्री वाद्यों के द्वारा भिन्न–भिन्न रसों की निष्पत्ति होती हैं। साधारण रूप से यदि देखा

जाए तो प्रत्येक वाद्य से प्रत्येक रस की निष्पत्ति सम्भव है। किन्तु जिस प्रकार प्रत्येक मानव का अपना निजि स्वभाव होता हैं उसी प्रकार इन वाद्यों की भी अपनी निजि विशेषता होती है जिसमें परस्पर भिन्नता देखने को मिलती है।

जैसे –

श्रृंगार रस– श्रृंगार रस में विचित्र तथा प्रेम संबन्धी भावनाओं का वर्णन होता है। प्रेमी–प्रेमिका के मिलन के अवसर पर सितार पर झाला प्रस्तुत किया जाता है। इस रस के अन्तर्गत विद्वानों द्वारा तत् वाद्यों में सितार, स्वरमंडल, संतूर उपयुक्त बताए गए हैं।

करूण रस– करूण रस में दुःख भरी, अश्रुपूर्ण एवं अत्यन्त एकाकीपन का वर्णन, ईश्वर अथवा प्रेमी से मिलने की कामनाओं का वर्णन किया जाता है। इसमें सारंगी, वॉयलिन, इसराज आदि शामिल हो सकते हैं। करूण राग की सृष्टि सारंगी पर मारवा राग बजाकर की जा सकती है। 12

हास्य रस– हास्य रस में हँसी लाने वाली या उत्पन्न करने वाली स्थितियों के लिए मुख्य गायक–वादक के बीच एक टुकड़ा एक साथ बजाना अथवा सवाल–जवाब कर प्रदर्शन किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी भी वाद्य–वृन्द में डबल बास की ध्वनि श्रोता का मनोरंजन करती हैं। हास्य रस को हम संगीत में मनोरंजन का रूप मान सकते हैं। इस रस में कुछ लोक वाद्यों को भी रखा जा सकता है जैसे– रावण–हत्था, भपंग, एकतारा आदि। 13

रौद्र रस– रौद्र रस में गुस्सा तथा उत्तेजना के क्षणों का प्रदर्शन होता है। इस रस की अभिव्यक्ति भारतीय विद्वानों ने तत् वाद्यों को स्थान नहीं दिया है। इसमें अवनद्ध वाद्यों को रखा गया है।

वीर रस– इस रस में पराक्रम, जीत तथा उत्तेजना को एक शानदार तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। जैसे– रूद्र वीणा, विचित्र वीणा, सुरबहार आदि इस रस की अभिव्यक्ति कर सकते हैं।

भयानक रस– यह भाव उत्पन्न करने वाला रस है। पं. रवि शंकर के अनुसार" संगीत में इसका प्रदर्शन संभव नहीं है। तत् वाद्यों द्वारा तो बिल्कुल नहीं। सिम्फनी आर्केस्ट्रा थोड़ा बहुत भयानक रस उत्पन्न कर सकता है।"

शांत रस– यह रस शांति, निश्चिंता तथा आराम का प्रतीक है अथवा इनका आभास होता है। तानपुरा, सरोद ,रबाब की ध्वनि शांत रस के माध्यम है। 14

वीभत्स रस– इस रस मे घृणायुक्त स्थितियों का प्रदर्शन किया जाता है। संगीत के माध्यम से इसका प्रदर्शन दुष्कर है।

अद्‌भूत रस– अद्‌भूत रस में आश्चर्यजनक, आनंददायक तथा थोड़ा बहुत भय का प्रदर्शन किया जा सकता है। जैसे एक समूह में वादन चल रहा है वो भी अलग–अलग तत् वाद्यों का इसमें एक साथ अलग–अलग चीजों का यदि वादन किया जाए जैसे– एक साथ कई वाद्यों में अलग–अलग लयों द्वारा व अलग स्वरों का वादन हो तो एक अद्‌भूत रस की सृष्टि संभव है। 15

भक्ति रस– भक्ति रस मूलतः भावनाओं के शुद्ध रूप में धार्मिक होता है। वास्तव में यह शान्त तथा अद्‌भूत रस का मिश्रण है। तानपुरा, सरोद, रबाब आदि से रस की अभिव्यक्ति संभव है। 16

तंत्री वाद्यों की विभिन्न लयों द्वारा नव रस निष्पत्तिः–

सामान्य रूप से देखा जाए तो एक ही ताल में लय–भेद विभिन्न रसों की अनुभूति करवाने में सक्षम है। गायन,वादन,तथा नृत्य में जो निश्चित व नियमित कालनुसार क्रियाएं होती हैं, उन्ही क्रियाओं के बीच के समय को लय कहते हैं। 17

आज के सर्वाधिक प्रचलित तत् वाद्य सितार को यदि देखे तो यह पता चलता है कि सितार की "मसीतखानी (विलम्बित लय) गत" में विद्वानों के अनुसार–करूण व शांत रस की निश्पत्ति मानी जाती है। रजाखानी (मध्य लय) गत में हास्य या श्रृंगार रस बताया है तथा झाले या तानों में (द्रुत–लय) वीर, अद्‌भूत, रौद्र रसों की निष्पत्ति मानी गई है। 18

तंत्री वाद्यों के द्वारा रागों से नव रस निष्पत्तिः–

यदि तंत्री वाद्यों की राग के संदर्भ में रस के विषय में विचार करें तो पाते हैं कि प्रत्येक राग से प्रत्येक राग की सृष्टि संभव है। कई बार लय का विभिन्नता से, कई बार राग विभिन्नता से अथवा प्रस्तुति के भिन्न–भिन्न तरीके से भी। एक ही राग से भिन्न–भिन्न रस की निष्पत्ति होती है। तात्पर्य यहीं है कि प्रत्येक राग से प्रत्येक रस की सृष्टि होती है। पं. रवि शंकर जी कहते हैं कि "हर राग का अपना एक मूल रस होता है तथा उस राग से उसी प्रकार के और रस का भी संबंध हो सकता है। अतः ऐसी अवस्था में विभिन्न रसों की निष्पत्ति संभव है। जैसे कि राग मालकौंस। इस राग को यदि सितार पर देखें तो पाएंगे कि मूल रस श्रृंगार है तो भी आलाप में शांत व करूण रस की निष्पत्ति होगी। पर झाले में अद्‌भूत वीर रस निष्पादित होंगे, यह सभी तत्व प्रायोगिक अभ्यास से ही संभव है। "अर्थात् वैसे तो प्रत्येक राग से प्रत्येक प्रकार के रस की निष्पत्ति संभव है किन्तु जिस राग से जिस रस की निष्पत्ति अधिक होती है उसे ही विद्वानों ने उक्त राग का रस माना है जैसे –

राग भैरव	–	शांत रस, वीर रस, भक्ति रस
राग तोड़ी	–	भक्ति रस, श्रृंगार रस
राग हिंडोल	–	श्रृंगार रस
राग मालकौंस	–	वीर रस, भक्ति रस
राग दरबारी कान्हड़ा	–	गंभीर
राग श्री	–	गंभीर आदि। 19

विभिन्न तत् वाद्य वृन्दों द्वारा नव रस निष्पत्ति–

भारतीय संगीत में वाद्य वृन्द की परम्परा काफी समय से चली आ रही है और ये काफी प्रचलित रही है उसका मुख्य कारण यह है कि यह प्रणाली अपने आप में दृश्य और श्रव्य है। तत् वाद्य वृन्द में

भिन्न–भिन्न रसों की अभिव्यक्ति के लिए अलग–अलग तत् वाद्यों को लिया जाता है। इसके चुनाव से पूर्व रस निश्चित करना आवश्यक होता है। जैसे– अगर श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति करनी है तो सितार, सरोद, सन्तूर, सुरबहार, हॉर्प, वॉयलिन, गिटार आदि तत् वाद्यों को लिया जायेगा व इसी रस के अनुरूप काव्य का चयन करना होगा तो निश्चित रूप से श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति होगी।

इस विषय पर पं. रविशंकर जी कहते हैं– "यदि आपने भक्ति रस का चयन किया तो सर्वप्रथम रचना का चुनाव रस के अनुसार किया जाएगा, राग का चुनाव भी रस के अनुसार होगा। जैसे– दुर्गा, हिंडोल, बसन्त, केदार, हमीर, कामोद, देश,भैरव आदि। तथा तन्त्री वाद्यों का चुनाव भी रचना के व रस के अनुसार ही किया जाएगा। जैसे– विचित्र वीणा, बेला, वंशी, सरोद, सारंगी, तार शहनाई का चुनाव व प्रयोग होगा।

प्रसिद्ध सरोद वादक "अमजद अली जी" ने भी एकता के स्वर तथा 'एकता का संदेश' आदि शीर्षक से रचना की थी। जिसमें पं. रविशंकर जी जैसे ही तत् वाद्यों का प्रयोग पाया जाता है। जो इस रस की निष्पत्ति में मुख्य रूप से सहायक है। 20

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि वाद्य वृन्द द्वारा ज्यादा श्रेष्ठ व तीव्र रूप में रचना द्वारा रस निष्पत्ति हो सकती है यही कारण है कि आज फिल्म संगीत में अनेक वाद्यों का प्रयोग होता है जो रस निष्पत्ति में अधिक सक्षम है।

तंत्री वाद्यों में स्वरों द्वारा नव रस निष्पत्ति–

प्रत्येक राग का निर्माण या धुन का निर्माण स्वरों से होता है। प्रत्येक स्वर का अपना एक निश्चित रस है। वादन में लोक धुन हो अथवा शास्त्रीय गत दोनों में ही स्वरों का प्रयोग या गत के अनुरूप अथवा राग के अनुरूप या अवसरानुकूल ही किया जाता है जिससे दोनों के साम्य से उचित प्रकार से जिस रस की आशंका है वही रस प्राप्त हो सके यह कार्य गुणी जन ही करते हैं।

वैसे तो गुणी जन ने प्रत्येक स्वर से निश्चित रसों की सृष्टि मानी है जो निम्नलिखित है –

शुद्ध–स्वर	रस
षड्ज	वीर, रौद्र, अद्भुत
ऋषभ	वीर, रौद्र, अद्भुत
गंधार	करूण
मध्यम	हास्य, श्रृंगार
पंचम	हास्य, श्रृंगार
धैवत	भयानक, वीभत्स
निषाद	करूण
कोमल स्वर	रस
रिषभ	करूण
गंधार	करूण
धैवत	शांत, वीर
निषाद	शांत, वीर

अतः हम कह सकते हैं कि जो रस जिस स्वर विशेष के हैं उस स्वर युक्त राग से वहीं रस निष्पादित होगा। अतः जब तत् वाद्य पर किसी राग का वादन करेंगे तो उनमें से उसी राग से वही रस निष्पादित होंगे तो स्वरों से होता है।

अतः हम यह कह सकते हैं कि संगीत की प्रत्येक विधा का प्राण रस में है।

संदर्भ सूची :

1. आनन्दगिरिकृत "तेतिरीयोपनिशद् " पृ.सं. 81
2. शर्मा, यादवेन्द्र, "हिमालय प्रदेश के मण्डी तथा बिलासपुर जिलों के लोक गीतों का सांगीतिक पक्ष", पृ.सं. 464
3. दीक्षित,प्रदीप कुमार, "संगीत रस" 'संगीत', पृ.सं. 8
4. तैतिरीय उपनिशद 2.3.1
5. .भरत,"नाट्यशास्त्र",भाग–2 अध्याय–6 पृ.सं. 677
6. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, "सौन्दर्य रस एवं संगीत", पृ.सं. 99
7. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, "सौन्दर्य रस एवं संगीत", पृ.सं. 103
8. शर्मा, यादवेन्द्र, "हिमाचल प्रदेश के मण्डी तथा बिलासपुर जिलों के लोक गीतों का सांगीतिक पक्ष", पृ.सं.465
9. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, "सौन्दर्य रस एवं संगीत," पृ.सं. 105
10. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, "सौन्दर्य रस एवं संगीत" पृ.सं. 106
11. वही, पृ.सं. 108
12. चक्रवर्ती, डॉ. कविता, "भारतीय संगीत में वाद्यवृन्द" पृ.सं. 67
13. वही, पृ.सं. 67
14. वही, पृ.सं. 68
15. वही, पृ.सं. 68
16. वही, पृ.सं. 68
17. वही, पृ.सं. 68
18. संगीत कला विहार ,अक्टूबर–नवम्बर, 1990 पृ.सं. 376
19. शर्मा, डॉ. मृत्युंजय त्रिपाठी, रामनारायण, "संगीत मैनुअल" पृ.सं. 296
20. चक्रवर्ती, डॉ. कविता, "भारतीय संगीत में वाद्यवृन्द" पृ.सं.